AMRJ
Akshara Multidisciplinary Research Journal
Single Blind Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
E- ISSN 2582-5429
April 2023 Special Issue 08 Volume IV
SJIF Impact- 5.67

18

भारतीय लोक धर्म में नागपूजा

डॉ. अंजली दुबे
अतिथि विद्वान, इतिहास
शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर, उत्कृष्टता महाविद्यालय सागर, मध्य प्रदेश।

सारांश :
पुराणों में वर्णित यह पूजा वर्तमान में भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी पूर्व में थी। नागदेवता के उत्सव को नागमह कहते थे। नागों की माता (पृथ्वी) सुरसा के नाम से जानी जाती हैं। विष्णु के समान शिव के साथ भी नाग परंम्परा का समन्वय धर्म के इतिहास में मिलता है। इनको अंधकार या पाताल एवं पार्थिव लोकों का प्रतिनिधि माना जाता है। भरहुत के प्राचीन शुंगकालीन स्तूप में अंकित और पवाँया में प्राप्त नागकालीन यक्ष मूर्तियों से प्रकट है, कि इस जनपद में पांचवी शताब्दी ईस्वी तक यक्ष–पूजा प्रचलित रही है। नागों और वाकाटकों ने लगभग छः सौ वर्षों तक अपने उपास्य शिव और उनके मंडल के नाग, चंद्र नंदी आदि की पूजा जन–जन में फैला दी थी। पर्यावरण के तीन कारक मृदा, वायु, आदित्य लोक हैं जो सर्वव्यापक शक्ति अर्थात् विष्णु द्वारा रचित तथा संरक्षित है। (अधिक्षियन्र्त भुवनानि विश्वा, ऋग्वेद 1. 154.2)। विष्णु ने तीन कदम में तीनों लोकों का अधिग्रहण कर लिया था जो वास्तव में इनके संरक्षक होने का प्रतीक है। श्रावण मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी, नाग पंचमी के नाम से विख्यात है। इस दिन व्रत करके इसके पूजन का विधान माना जाता है।

मुख्य शब्द : नाग, धर्म, लोकधर्म, विष्णु, आरण्यक, यजुर्वेद, कृष्ण, चन्देल।

विषय प्रवेश :

नागपूजा भारतीय लोक धर्म का पुराना रूप है। नागदेवता के उत्सद को नागमह कहते थे। उनके मेले या यात्राएं नागयात्रा या नाग जत्ता कही जाती थी। उनके लिए दी जाने वाली पूजा–सामग्री और बलि, नागबलि कहलाती थी। पूरे भारत वर्ष में नागपूजा की परम्परा प्रचलित रही है। वैदिक, बौद्ध और जैन धर्मो में नागपूजा का समन्वय हुआ है। भारत में यक्ष पूजा की प्राचीन परम्परा से भी पहले नागपूजा थी, ऐसा ज्ञात होता है। नागों की माता सुरसा पृथ्वी की ही संज्ञा है। नागमाता, पृथ्वी का रूप है; ऐसा ब्राम्हण साहित्य में भी मिलता है।

"इयं पृथिवी कद्रूः– शत 3/6/2/2;
इंय वे पृथिवी सर्पराक्षी – शत 2/1/4/30

विष्णु अनन्त नामक शेष नाग की शय्या पर सोते हैं। गुप्त काल में विष्णु की पूजा उनके इसी उपाख्यानों में मिलती है। पंचरात्र भागवतों ने इसे खुलकर स्वीकार किया है, उनके अनुसार चतुर्व्यूह के अंतर्गत बलदेव, संकर्षण, वासुदेव कृष्ण के भाई हैं, और वे भी शेषनाग के अवतार हैं। भागवत धर्म के आरम्भ में संकषर्ण और वासुदेव इन दोनों का नित्य जोड़ा माना जाता था। कृष्ण को बलदेव सहायवान (आरण्यक पर्व 13/36) या संकषर्ण द्वितीय महाभाष्य; उद्योग पर्व 47/72 बलदेव द्वितीय कहा गया है कृष्ण और बलराम को वायुपुराण में पुरूष प्राकृतिक देव कहा गया है।

विष्णु के सदृश्य शिव के साथ भी नाग परम्परा का समन्वय प्राप्त होता है। यजुर्वेद में रूद्र को अहिंसन्न; अर्थात सर्प के सानिध्यवाला कहा गया है। लोक धर्म की दृष्टि से नाग और सर्प इनकी धारा यदि कहीं पृथक रही हों तो इनका भेद अब स्पष्ट हो चुका है। नागों के सम्बन्ध में दो कथाएँ महत्वपूर्ण हैं – एक नाग और गरूड़ का संघर्ष और दूसरा जन्मेजय का नागयज्ञ। पहली कथा के अर्थ मूल में धार्मिक गाथा का अंश विशेष है और दूसरे मूल में ऐतिहासिक अंश है। गरूड़, सूर्य के प्रतिनिधि हैं और नाग, अंधकार से भरे हुए पाताल या पार्थिव लोकों के प्रतिनिधि हैं। गरूड़ और नागों के संघर्ष में गरूड़ की सबसे बड़ी विजय उनके द्वारा स्वर्ग से अमृत कलश का लाना है।[1]

जन्मेजय के नागयज्ञ की कथा के पीछे कुछ ऐतिहासिक तथ्य छिपे हैं। कुरू–पाण्डव वंश के साथ तक्षक वंश का झगड़ा चला आता था, इसी द्वन्द में परीक्षित का अन्त हुआ, जिसका बदला जन्मेजय ने नागयज्ञ के रूप में ले लिया। जरतकारू के पुत्र आस्तिक, वासुकिनाग की बहिन के पुत्र कहे गए हैं। जन्म के बाद वासुकि ने ही इनका लालन–पालन किया। कृष्ण के जीवन में भी कालिया नाग को वश में करने की कथा आती है। जैसे ही बुद्ध का जन्म हुआ; नन्द और उपनन्द नाम के नागों ने प्रकट होकर उनकी

E- ISSN 2582-5429
AMRJ
Akshara Multidisciplinary Research Journal
Single Blind Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
SJIF Impact- 5.67
April 2023 Special Issue 08 Volume IV

स्तुति की। निरंजना नदी में नाग देवता का निवास था। जब बुद्ध उसमें स्नान कर चुके तो वहां के सागर नागराज की दुहिता ने बोधिसत्व के बैठने के लिए रत्न जड़ित आसन उन्हें दिया। कहा जाता है कि जब सुजाता की दी हुई खीर खाकर उसका सोने का कटोरा नदी में फेंक दिया गया, जिसे वहाँ के नाग ने उठा लिया, किन्तु रूद्र ने गरूड़ रूप धरकर उसे छीन लिया। जातकों की लोक कथाओं में नागों के आख्यान भरे हुए हैं। पंचतंत्र में कथा है ब्राम्हण की पत्नी नागरूपी पुत्र को जन्म देती है। पिता पुत्र का विवाह एक सुन्दर कन्या से करता है और पुत्र का नागस्वरूप जब सामने आता है तो उसे मारने का प्रयास किया जाता है। अनेक प्रदेशों में भिन्न भिन्न स्वरूपों में यह पढ़ने को मिलती है। डॉ. फौगेल ने इस कथा का तुलनात्मक अध्ययन किया है। इस प्रकार का लोक विश्वास बहुत से देशों में पाया जाता है। लोक में नागों की पूजा के बहुत प्रमाण भारतीय कला में मिलते हैं। मथुरा के आसपास शुंगकाल से गुप्तकाल तक नाग पूजा का बहुत प्रचार था। वहाँ से सैकड़ों नागमूर्तियाँ मिली हैं। उनमें एक दधिकर्ण नाग की मूर्ति है। छड़गाँव नामक गाँव में से एक विशाल नागमूर्ति मिली थी जो कुषाणकालीन नाग मूर्तियों का सबसे बड़ा और अच्छा उहारण है। दाऊजी में नागपूजा का बहुत प्राचीन केन्द्र जान पड़ता है, जिसका सम्बन्ध बलदेव जी की मान्यता के साथ हो गया। वहाँ जिस मूर्ति की पूजा की जाती है, वह नागमूर्ति ही है।

लोक धर्म साहित्य और कला में नाग पूजा का सबसे प्रभावशाली उदाहरण राजगृह के मणिनाग देवता की पूजा का स्थान मणियारमठ है। महाभारत तीर्थ यात्रा पर्व में राजगृह के गरम जल स्त्रोंतों का वर्णन करने के लिए बाद में लिखा है कि उनमें स्नान करके यात्री को उचित है कि वहाँ बँटने वाले प्रसाद जिसे यक्षिणी प्रसाद कहा जाता है, उसे भी चखे।

"यक्षिण्या नैत्यकं तत्र प्राश्नीत पुरूषः शुचिः।
यक्षिण्यास्तु प्रसादेन मुच्यते भ्रूणहत्या"।। आरण्यक 82/90

यह भ्रूण से सम्बन्ध रखने वाली राक्षसी वही जरा नाम की देवी या हारीति होनी चाहिए। उसके बाद यात्री मणिनाग के स्थान का दर्शन करें। जो मानव मणिनाग का प्रसाद चखता है उसे सांप का विष नहीं चढ़ता। एक रात मणिनाग के स्थान पर निवास करना चाहिए।[2] राजगृह में जरादेवी के साथ साथ मणिनाग की परम्परा भी आर्योत्तर जातियों से चली आ रही है। मूलतः जिन लोक देवताओं का परिगणन किया जाता है उनमें से अधिकांश वृक्षपूजा, जलाशयपूजा, नागपूजा, यक्षपूजा, भूत पूजा आदि आर्योतर धर्म विधि से ही संबंधित होते हैं।

मणियार मठ के स्थान में गुप्तयुग में एक मन्दिर बनाया गया था जो आज भी विद्यमान है। प्राचीनकाल में इस तरह के मन्दिर नागघर कहलाते थे। साकेत में नागघर का उल्लेख है जहां केवल मणिनाग का चत्वर मात्र था बाद में उसे घेरकर मन्दिर का रूप दिया गया। यहाँ की खुदाई से प्राप्त मिट्टी के करवे जिसमे लगभग 15 टोटी वाला पात्र पाया गया, उसका उपयोग नागपूजा में होता था। धर्मशास्त्रों में मूल नक्षत्र में जन्म लेने लेने वाले बच्चों की गृह शान्ति के लिए एक विशेषविधि का वर्णन मिलता है, और वर्तमान में भी यह विधान माना जाता है। नामकरण संस्कार 27 वें दिन किया जाता है तब तक माता के अतिरिक्त पिता उस बच्चे को नहीं देखता। 27 वें दिन 7 टोटियों के करवे से जल की धाराएँ छोड़ते हुए मूलिया बच्चे को स्नान कराया जाता है। मूल नक्षत्र का अधिष्ठात् देवता सर्प है। इसलिये यह शान्ति–विधि मणिनाग के स्थान में की जाती है।[3] लोक संस्कृति यथार्थ में जयशालिनी है। उसकी गोद में अमृत है।

मान्धाता के पुत्र पुरूकुत्स का नर्मदा के साथ विवाह का उल्लेख है।[4] विन्छयाटवी में नर्मदा तट पर तपस्या करके उसको महती सिद्धि मिली थी। भागवत में लिखा है कि नर्मदा नागों की बहन थी। उसका विवाह पुरूकुत्स से हुआ और पुरूकुत्स ने नागों के शत्रु गन्धर्वो को मार डाला।[5] विष्णु पुराण में इस कथा का विस्तार के साथ उल्लेख मिलता है। उसके अनुसार पाताल में मौनेय नामक छः करोड़ गन्धर्व रहते थे। उन गन्धर्वों ने नागकुलों को परेशान किया। उनको पराजित कर उनकी सम्पत्ति छीन ली। उससे तंग आकर नागों ने भगवान विष्णु से प्रार्थना की। विष्णु ने कहा "मैं मान्धाता कुल में उत्पन्न पुरूकुत्स में प्रविष्ट होकर उन गन्धर्वो का नाश कर सकता हूँ।" तब नागों ने अपनी बहन और पुरूकुत्स की पत्नी नर्मदा को प्रेरित किया। उसने पुरूकुत्स को रसातल ले जाने में सहयोग किया। वहाँ पहुंचकर पुरूकुत्स ने उन गन्धर्वो का नाश किया। उस समय समस्त नागराजों ने प्रसन्न होकर नर्मदा को वरदान दिया कि जो कोई तेरा

AMRJ
Akshara Multidisciplinary Research Journal
Single Blind Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
E- ISSN 2582-5429
April 2023 Special Issue 08 Volume IV
SJIF Impact- 5.67

स्मरण करेगा, उसे सर्प–विष नहीं लगेगा।[6] नर्मदा का विवाह वर्णन एवं उससे उत्पन्न पुत्र त्रसदस्यु का उल्लेख अनेक वृतान्तों में मिलता है।[7]

सुबन्धु[8] वासवदत्ता के टीकाकार शंकर ने लिखा है "पहले तपस्यारत पुरूकुत्स ने एक समय नर्मदा में स्नान करते समय किसी सुन्दरी को देखकर कामाविष्ट होकर नीति का परित्याग कर दिया।" अन्य टीकाकारों का भी मत उक्त पौराणिक आख्यानों से प्रभावित है, जिसमें कहा गया है कि "रेवा ही स्त्री रूप से पुरूकुत्स के समीप आई।[9] श्री वेदा आर्य ने नागवंशी कन्या नर्मदा के साथ इक्ष्वाकुवंशी राजाओं के विवाह की इन पौराणिक कथाओं का तात्पर्य यह लगाया है कि "नागवंशीय व्यक्तियों के अधिकृत तथा अनुशासित प्रदेश में कोई राजसिंहासन या राजधानी जैसी बहुमूल्य एवं भव्य वस्तु नहीं थी। उनकी जीविका का एक मात्र अवलम्ब अथवा जीवन की सर्वाधिक बहुमूल्य वस्तु नदी थी। अतः जब जब वे इक्ष्वाकुवंश के राजाओं से पराजित होते थे अथवा उनके उत्तराधिकारी बागडोर संभालते थे तब तब वे नदी को पत्नी के रूप में उन्हें समर्पित कर देते थे। पवित्रता की दृष्टि से नदी को वे अपनी बहन समझते थे। प्रतीत होता है, नर्मदा द्वारा नागों से प्राप्त इसी वरदान के कारण ही परवर्ती साहित्य में नर्मदा एवं बड़े–बड़े विषधर सर्पों का उल्लेख करके उसकी भयंकरता को वर्णित किया गया है, अथवा नर्मदा में ऐसे सर्पों के पाए जाने के कारण ही इस प्रकार के प्रतीकात्मक पौराणिक आख्यान की कल्पना की गई हो। मूलतः वासुकि सर्प (तुलनीय वासुकि नाग) के मानने वाले कालबेलिए जाति के रूप में वर्तमान में राजस्थान में पाई जाती है, जिसकी संस्कृति में लोकरंग आज भी परिलक्षित होता है। नाग (अनन्त नामक) रूप में प्रचलित हैं। लोक–कथाओं में हमें अनेक ऐसी सुन्दर राजकुमारियों का वर्णन मिलता है जो दिन के समय तो मानवी रहतीं हैं किन्तु अर्द्ध–रात्रि के बाद जिनका मानव–शरीर निर्जीव हो जाता है और उसमें से उनका वास्तविक सर्पिणी का रूप प्रकट होता है।[10]

नागमूर्तियों के संदर्भ में प्राचीन इतिहास में देखने का प्रयास मैंने अनेक कोणों से किया इसमें नागपूजा, यक्ष पूजा के समान लोकप्रिय और व्यापक थी। पुरातत्व के साक्ष्यभूत प्राचीन शिलाश्रयों में तथा ताम्रपाषाण युगीन मृद्भाण्डों में भी नाग मूर्तियों का अंकन पाया जाता है। ऋग्वेद, अथर्ववेद, गृहसूत्र, बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में, नाग पूजा का उल्लेख है। हिंगलाजगढ़ के समीप मानपुरा क्षेत्र में ताखाजी के नाम से विख्यात विशाल नागराज की प्रतिमा है।[11] नागराज सरोवरों एवं नदियों के देवता माने गये है। इस मूर्ति की खोज सर्वप्रथम जेम्स टॉड द्वारा 1821 ई. में की गई थी। तक्षक मानव के रूप में खड़े हैं। पृष्ठ भाग में कुण्डलित नाग सात फनों से नागराज पर छत्र छाया किए है। नागराज के वाम हस्त में चक्र और दक्षिण हस्त में कमल है। किरीट मुकुट, वनमाला, भारी कुण्डल हार, यज्ञोपवीत आदि आभूषणों से आभूषित हैं। मूर्ति के दोनों ओर धन्वन्तरि तथा नाग हैं। इस प्रतिमा का काल निर्धारण लगभग 12 वीं शताब्दी का है।[12]

भरहुत कला में नाग देवताओं को जल से निकलते हुये दिखाया गया है। वाल्मीकि रामायण और दिव्यावदान के अनुसार उनकी संज्ञा उदक–निःसृत देव थी और उनकी गिनती पाँच रक्षा–पंक्तियों में की जाती थी। कुषाण काल में उन्हें तड़ाग और पुष्पकरिणी के तट पर स्थापित किया जाने लगा, क्योंकि वे पृथ्वी के नीचे की जलधाराओं के अधिष्ठात देवता माने जाते थे। उनका स्वामी विरूपाक्ष चार लोकपालों में था।[13] नाग भी लोक धर्म के देवता थे। वे व्याल विग्रह में अंकित किए गए हैं। नाग पाताल लोक के अधिपति थे। अनन्त शेषनाग के रूप में विष्णु का वाहन कल्पित किया गया है। बुद्ध, महावीर और कृष्ण के जीवन में नाग देवता की कथा प्रकाश में आती है।[14] बौद्ध साहित्य में एवं बौद्ध धर्मियों में लोक धर्म में जन साधारण के विश्वास में प्रमुख देवताओं के अतिरिक्त यक्ष, नाग, किन्नर गंधर्व, वृक्ष एवं नदियों की पूजा का विवरण मिलता है। नागपूजा की चर्चा विशेषतः अंगुत्तर निकाय में मिलती है। एक बार बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा, हे भिक्षुओ, आप लोग नागों की पूजा करें। इससे आप उनके दंश से मुक्त रह सकेगें।[15] जातकों में दूध, खीर, मत्स्य, मांस, सुरा आदि द्वारा नागबलि सम्पन्न किये जाने के उल्लेख मिलते हैं।[16] नाग–नागिनों की पूजा सर्प तथा मानव दोनों रूपों में होती थी। नाग पत्नियाँ सुन्दरी रमणियों के रूप में होती थीं। उनकी पूजा विशेषतः सन्तान की इच्छा वाली स्त्रियां करती थी।[17]

महाभारत का कथन है कि प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः अर्थात् लोक की सम्पूर्ण गतिविधियों का अवलोकन करने वाला ही जगत के यथार्थ को देख लेने में सक्षम है। लोक की अपनी विविध भंगिमाएँ बहुअयामी विन्यास तथा बहुरूपक होने के कारण लोक बहुवाची है। लोक सदा से अशास्त्रीय रहा है, यही उसकी महान विशेषता है। लोक देवों की परम्परा का प्रचलन धार्मिक क्षेत्र में युग–युगीन यात्रा करते हुए

E- ISSN 2582-5429
AMRJ
Akshara Multidisciplinary Research Journal
Single Blind Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
April 2023 Special Issue 08 Volume IV
SJIF Impact- 5.67

परवर्ती और परिवर्धित रूपों में विवेच्य काल में भी विद्यमान रहे। इन लोक देवों की संख्या और स्वरूप विविध है। नागपूजा, यक्ष यक्षी पूजा, वृक्षपूजा, जलपूजा, नवग्रह पूजा, गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर, हनुमान जी को लोकदेवों की धार्मिक प्रतिष्ठा प्राप्त है। धार्मिक दृष्टि से नाग–नागिन, सर्प, सर्प के पुणरूणाग–विग्रह सर्पफणों के छत्र के रूप में शिव, विष्णु, पार्श्वनाथ आदि देवों के साथ नाग का सह संबंध यह प्रमाणित करता है कि नाग पूजा का संबंधित रूप ही लोक में नागपंचमी पर्व के रूप में ग्रामीण क्षेत्रों में अति उल्लास के साथ मनाया जाता है। कोई ऐसा धर्म और कोई ऐसा धर्मग्रंथ नहीं है जिसमें नाग का संबंध लोकदेवों के साथ न किया गया हो।[18] काश्मीर में नागपूजन का प्रचलन था, काश्मीरी ग्रंथ नीलमतपुराण में पांच सौ नागदेवताओं की सूची मिलती है। राजधानी भागवती में अथाह जल की गहराई में पाताललोक या नागलोक का वर्णन महाभारत में मिलता है।

चन्देल शासन का काल लगभग सातवीं से 12 वीं शताब्दी तक माना जाता है। चन्देल मंदिरों में नागों की मूर्तियां देखी जा सकती हैं जो लोक प्रचलित, लोक पूजित तथा नागदेवता के रूप में चंदेल कला में सर्वाधिक लोकप्रिय भी थी।

खजुराहो के मंदिरों में नाग एवं नागिन प्रतिमाएँ प्रतीक एवं मानव रूप दोनों में उत्कीर्ण हैं। जिसमें शिव, विष्णु, बलराम व गणपति प्रतिमाओं के साथ दृष्टव्य हैं। विष्णु प्रतिमाओं में मानवरूप में नागों को उत्कीर्ण किया गया है। खजुराहो के संग्रहालय में रक्षित विष्णु प्रतिमा में देवता के पादपीठ के नीचे कई छोटी आकृतियाँ बनी हैं, जिनमें केन्द्र में एक ही देवी कूर्म के ऊपर ध्यान मुद्रा में आसीन है, जिनके दोनों पार्श्वों में सर्प पुच्छ युक्त दो नाग अंजलिमुद्रा में हाथ जोड़े प्रदर्शित हैं। यहां देवी लक्ष्मी के कुण्डलरूप में समर्पित नाग प्रतिमा भी देखी जा सकती है।[19] इसके साथ ही बाद के कालों में भी नाग, कई स्थानों पर जैसे मंडला, जबलपुर, त्रिपुरी, बिलहरी आदि पर लोक देवता के रूप में पूजित एवं प्रतिष्ठित हैं। दुर्ग जिले के कलचुरिकलीन मंदिरों में नागपुरा का शिव मन्दिर प्रसिद्ध है। यहां नागपूजा का विशेष रूप से प्रचलन रहा है। नाग–नागिन का मानव और सर्प दोनों रूपों में अधिकाधिक शिल्पांकन किया गया है। इनकी अर्ध मानव व अर्थ सर्प, रूपों में संयुक्त आकृतियां भी बनाई गई हैं। नागपुरूष को प्रायः द्वार–स्तभों पर अंजलिबद्ध मुद्रा में दिखाया गया है।[20]

नागपूजा भारत की धार्मिक परम्परा का एक अंग है। हड़प्पा संस्कृति की कतिपय मुद्राओं पर अंकित नाग आकृतियाँ सैन्धव सभ्यता में नागपूजा की परिचायक हैं। देवजन के रूप में नागों का अर्थववेद में उल्लेख मिलता है। समुद्र मंथन, त्रिपुरान्तक आदि कथानकों से असुरों के विरूद्ध नाग द्वारा देवताओं की सहायता सुस्पष्ट है। इस प्रकार नाग पूजा का महत्व बढ़ता है और उनकी प्रतिमा भी बनाई जाने लगी। पुराण वर्णित प्रतिभा लक्षण के अनुसार नाग प्रतिमा में नाभि के ऊपर का भाग मानव रूप में तथा नीचे का सर्प के रूप में बनाया जाना चाहिए। उसके हाथों में खंग और खेटक तथा सिर पर सर्प मुख वाले फणों का प्रदर्शन होना चाहिए।[21]

निष्कर्षः

पूजा का मूल अर्थ है–एकाग्र मन से कार्य का सम्पादन करना। लोक जीवन में उत्सव को मानने की परम्परा भारत में आदि काल से रही है। वर्तमान में भी जीवित लोक परम्परायें जो मानव मन में कहीं न कहीं नाग जैसे जीव से जुड़ने के माध्यम से मन्दिरों में स्थित नागदेवता की अर्चना एवं वर्ष में एक दिन नागपंचमी के रूप में मनाने का ध्येय आध्यात्मिक प्रारूप में जो भी हो उसका सांसारिक, पर्यावरणीय एवं जन्तु जगत में इस विषधर की विशेष महत्ता है जिसे संरक्षित करना चाहिये एवं अभ्यारण में इन्हें प्राकृतिक स्वतंत्रता हेतु पहल करना चाहिये एवं गाँवों में, ग्रामीणों में इसका प्रचार–प्रसार कर इनके स्थानों को चिन्हित करके उसे मानव पहुँच से दूर रखने का प्रयास अवश्य होना चाहिये तभी इस देवता को कला में, धर्म में, श्रद्धा में प्रमुख स्थान मिलेगा एवं सांस्कृतिक केन्द्र, शिक्षा व कौतूहल का भी विषय होगा जो विज्ञान की वैज्ञानिकता सिद्धता का प्रश्न नहीं है वरन् कलात्मकता मानविकी संधारण का विशेष रूप है। अतः विश्व में इसकी महत्ता यह होगी कि सहचर अभ्यारण जगत में इसे मानवीय पहलुओं की सह–अस्तित्व की संस्कृति के साथ अपनायें।

संदर्भः

1. अग्रवाल वासुदेव शरण, प्राचीन भारतीय लोकधर्म, प्रकाशक रतिलाल दीपचन्द्र देसाई अहमदाबाद, 1964, पृ. 69

2. मणिनाग ततो गत्वो गो–सहस्त्र फलं लभेत्
नैत्यकं भुग्यते यस्तु मणिनागस्य मानव :
दस्टस्यापी विशेणापि न तस्यकमते विषम्
तंत्रोस्य रजनीमेकाँ सर्वपापै : प्रमुच्यते।।
आरण्यक 82/91/92

3. अग्रवाल वासुदेव शरण, प्राचीन भारतीय लोकधर्म, पृथ्वी प्रकाशन वाराणसी 1969, पृ. 72

4. अस्मिन्नरण्ये नृपते मान्धातुरापि चात्मजः
पुरूकुत्सो नृपः सिद्धिं महतीं समवाप्तवत
भार्या समभवद्यस्य नर्मदा सरितां वरा
सोऽस्मिन्नरण्ये नृपतिस्तपरस्तप्त्वा दिवं गतः।
भ.भा. आश्रमवासपर्व 26/12–13

5. नर्मदा भ्रातृभिर्दत्तां पुरूकुत्साय 11 भाग, 9/72
तथा द्र, प्राचीन कोष, पृ. 349

6. नर्मदायै नमः प्रातर्नर्मदायै नमो निशि।
नमोऽस्तु नर्मदे तुम्यं त्राहि मां विषसर्पतः।।
विष्णु पुराण पृ. 296

7. पुरूकुत्सस्य दायादस्त्रसदस्युर्मध यषाः।
नर्मदायांसमुत्पन्नः स्मूतस्तस्य चात्मजः।।
वायु पुराण 88/74

8. पुरूकुरसः कुत्सित एवामभवत्
वासवदन्ता पृ. 241

9. ''रेवैव स्त्रीरूपेणागता इत्सपरे''
वही पृ. 241

10. सामवेद की सजीव मूर्ति नर्मदा कादम्बिनी, अप्रैल 1986, पृ. 138

11. अग्रवाल, वही पृ. 8

12. दुबे श्यामाचरण, मानव संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, 1960, पृ. 180

13. त्रिवेदी चंद्रभूषण दशपुर मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी 1979, पृ. 115

14. अग्रवाल, वही पृ. 115

15. अग्रवाल, वही पृ. 345

16. अंगुत्तर निकाय 2, पृ. 72

17. जातक, पृ. 498

18. डफाल कमल बौद्ध वाड.मय में नारी प्रकाशक पुरातत्तव संगहालय भोपाल, 1984, पृ. 59

19. चन्देल कला में लोकधर्म शोध प्रबंध अप्रकाशित पृ. 340

20. खजुराहो पुरातत्व संग्रहालय मू.क्र. 117

21. पुरातन, पुरातत्व संग्रहालय भोपाल, पृ. 113